प्रमाण

●प्रकाशक
आर्यावर्त प्रकाशन गृह
सुजानगढ़ (राजस्थान)

●मूल्य—४)

●मुद्रक
मातादीन ढंढारिया
नेशनल प्रिंट क्राफ्ट्स
९५ए, चित्तरंजन एवेन्यू
कलकत्ता-१२

प्रणाम के गीतों की मधुर झंकृति अगर आपको क्षण भर भी
तन्मय करने में सक्षम हो सकी तो मैं सहज ही
अपने को कलासिद्ध मान लूंगा।

रतन निवास
सुजानगढ़

कन्हैयालाल सेठिया



माँ

को

दो शब्द

शूरमाओं, संतों और साधकोंकी लीलास्थली राजस्थानके प्रतिनिधि कवि श्रीकन्हैयालाल सेठियाकी नवीनतम हिन्दी रचनाओंका संग्रह "प्रणाम" आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे स्वाभाविक हर्ष हो रहा है।

श्रीसेठियाने इन कविताओंमें भारतीय दर्शनकी विशिष्टता और वेदान्त की निगूढ़तम अनुभूतियोंको इतने सरल, सरस एवं हृदयग्राही शब्दों तथा शैलीमें अभिव्यक्त किया है कि वे चिन्तकों और साधकोंकी जिज्ञासाओं और शंकाओंको दिशा-बोध देनेमें सहज ही समर्थ प्रतीत होती हैं।

शाश्वत, सनातन सत्य जैसे कविकी वाणीसे सहज फूटकर जीवनके चौराहेपर खड़े जिज्ञासुओंकी मनकी गाँठोंमें बंधे, कर्म-अकर्म, प्रकाश-अंधकार, जीवन-मृत्यु, गति-अगति, सत्य-असत्य, विराट-लघुके स्वरूपमें दीखनेवाले अंतरसे झाँकते हुए अद्वैत या सोऽहंके स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं। किसी भी शंकाके लिये कोई स्थान शेष नहीं रहता है। चरम विरोधी दो धाराओंके बीचमें विराजित सत्यके अस्तित्वको ढूंढनेकी कविकी दृष्टि सचमुच श्लाघनीय है।

मुझे विश्वास है कि चिन्तन-प्रधान इन कविताओंका हिन्दी-जगतमें यथेष्ट स्वागत होगा।

कलकत्ता
अक्षय तृतीया वि० स० २०२७

—रामनिवास ढंढारिया

(गति का है उत्कर्ष यही, वह
बन विराम सी दीखे !)

त्वरित घूमता चक्र, दृगों को
ठहरा सा लगता है,
किन्तु क्रिया की निष्क्रियता में
परिणति हो समता है,
अलख रहेंगे नखत, उषा यदि
बन न शाम सी दीखे !

मृत्यु असंगति नहीं, सहज वह
जीवन की संगति है,
रति का मूल स्वभाव पूर्ण हो
बन जाती फिर यति है,
वही साधना परम, स्वयं जो
विगत काम सी दीखे !

(कर्त्ता बनता सिद्ध कर्म ही
जब अकर्म बनता है,
मुक्ति नहीं कुछ और मात्र वह
प्रज्ञा की थिरता है,
अहम भावना वही महत् है
जो प्रणाम सी दीखे !)

कहीं न जाये मर घुट-घुट कर
कोई द्वंद्व तुम्हारा !

रचने दो दृग की सीपी में
उसको आँसू मोती,
उड़ने दो अम्बर में बनकर
चंचल गीत कपोती,
कहीं न जाये जड़ निबंध बन
कोई छंद तुम्हारा !

बने न कोई व्यथा अहिल्या
शापित हो बेचारी,
मुक्त खोलने दो करुणा को
मन की गाँठ तुम्हारी,
कहीं न जाये कालकूट बन
मधु मकरन्द तुम्हारा !

गहन वेदना परम प्रेरणा
की पावन महतारी,
ज्योति पुरुष कर देगी तुमको
पीड़ा की चिनगारी,
बँध कर भी जो खुल-खुल जाये
वह निर्द्वंद्व तुम्हारा !

पृष्ठ उलटते चलो कि क्वांरा
कहीं अगाया गीत मिले !

देख अछूते अधर, अधर पर
शायद सोया राग जगे,
तुम एकाकी, वह एकाकी,
मिल कर करुण विहाग जगे,
नाम पूछते चलो कि कोई
प्रिय मन भाया मीत मिले !

चार आंख कर चौराहे से
स्यात् राह का राज खुले,
भेद भरे क्षितिजों से तुमको
मंजिल का अंदाज मिले,
गांव पूछते चलो कि कोई
बिसरा हुआ अतीत मिले !

पुतली की कुटिया में तेरे
सांझ रहे या भोर रहे,
क्षण से क्षण को बांधे जब तक
लघु सांसों की डोर रहे,
चल तू, रुक मत, कहीं न पगले
तुमको समय व्यतीत मिले !

जीवन की सन्ध्या में चमके
शायद कोई तारा !

सपन दियरा का पंथी, टूटी
सूरज की बैसाखी,
समवेदन के स्वर में गाते
तरु पर बैठे पाखी,
कूलहीन क्षितिजों से उभरे
शायद कहीं किनारा !

छिपा चांद की तरी विहँसता
तम का निर्मम माँझी,
थके गीत के बोल, मौन के
हाथ रह गई बाजी,
दृग के सूनेपन में झलके
शायद कहीं इशारा !

आँसू की शबनम से भीगी
प्राणों की हरियाली,
कलियों के बदले काँटों से
उलझ गया वन-माली,
मिले आखिरी क्षण तक कोई
शायद स्नेह सहारा !

मत कर धीमा गीत, अभी तो
मंजिल दूर बहुत है !

पीकर स्वर का स्नेह, पंथ का
हृदय सदय हो जाता,
रागों के मेले में नभ का
सूनापन खो जाता,
मत रख पूजा थाल अभी तो
धूप कपूर बहुत है !

अगरु धूम से मस्त तुम्हारी
मन-मीरा नाचेगी,
तन्मयता की परम दशा से
चिन्मयता जागेगी,
मत रख सूना भाल उषा के
कर सिन्दूर बहुत है !

ध्वनि अपना इतिहास सदा ही
प्रतिध्वनि से लिखवाती,
चेतन का संगीत बावरी
जड़ता ही दुहराती,
मत कर क्षण से द्रोह समय का
निर्णय क्रूर बहुत है !

अम्बर की आँखों में कोई
सूरज है न सितारा !

केवल रज-कण भर हैं सारे
यहाँ-वहाँ जो छितरे,
अन्ध तिमिर के लिये यही सब
प्रखर विभा बन निखरे,
धरती की छाती पर कोई
धारा है न किनारा !

यह तो गति की अपने ही हित
रची हुई परिभाषा,
जो है एक अनेक उसे बस
कहने की अभिलाषा,
चिर असंग के लिये न कुछ है
मेरा और तुम्हारा !

जो अपने में पूर्ण, उसे कब
कोई भेद सुहाता !
यह अपूर्ण के मन की छलना
जोड़ा करती नाता,
परमहंस के लिये न कोई
है चंदन अंगारा !

सूरज का उगना निश्चित है
एक दिशा में,
किन्तु तिमिर के लिये खुली हैं
दशों दिशायें !

जो जितना ही दीप्त
नियन्त्रण उसका गति पर,
समाधिस्थ पर सहज चेतना
उर्ध्व निरन्तर,
शिखरों का उठना निश्चित है
केवल ऊपर,
किन्तु बिखरती ही रहती हैं
लघु कणिकाएं !

हर साधक का लक्ष्य
सतत है उसके सन्मुख,
उसे नहीं भटकाते क्षण भर
कल्पित सुख-दुख,
बरगद का बढ़ना निश्चित है
नीले नभ में,
किन्तु उलझती ही रहती हैं
जटिल जटायें !

रहता है निर्वात शिखा सा
हृदय अचंचल,
हिरण्य पुरुष के लिये न कुछ है
अशुभ-अमंगल,
श्री हरि का आसन निश्चित है
क्षीरो-दधि में,
किन्तु लपकती ही रहती हैं,
अहि जिह्वाएं !

मुझे नहीं, पर किसी थकित को
मंजिल का आश्वासन दे दो !

मैं तो स्वयं बांटता फिरता
अपने मधु गीतों का सम्बल,
मेरी गति निर्बाध उसे तो
क्या उदयाचल क्या अस्ताचल,
मुझे नहीं, पर किसी दलित को
अपना राज सिंहासन दे दो !

विभा-पुत्र मैं, तीन लोक को
मेरे शब्द-शरों ने जीता,
द्वापर ही क्या, हर युग में मैं
जब चाहूँ दुहरा दूं गीता,
मुझे नहीं, पर किसी भीष्म के
सिर को पुनः शरासन दे दो !

मैं अनादि हूँ, मुझे व्यापता
कभी नहीं इति-अथ का संशय,
मैं अरूप अनुभूत चिरन्तन
पूर्ण मात्र ही मेरा परिचय,
मुझे नहीं, पर प्रिया प्रकृति को
अपना पुरुष-पुरातन दे दो !

बीज दिया, बदले में मेरी
हरी भरी फुलवारी ले लो !

मुझे देह की इस झोली में
भारी लगता दान किसी का,
मुझ से नहीं उठाया जाता
जीवन भर अहसान किसी का,
रूप दिया, बदले में मेरी
हृदय कली रतनारी ले लो !

दाता रहे सदा ही दाता
वह न किसी के द्वारे जाये,
मुझे नहीं स्वीकार कि सब दिन
याचक, याचक ही रह जाये,
शब्द दिया, बदले में मेरे
गीतों की किलकारी ले लो !

तुम कहते हो पागल हो तुम,
कोई प्यार चुकाया जाता ?
पर मैं दुनियादार, यहाँ तो
हर व्यवहार निभाया जाता,
प्राण दिया, बदले में मेरी
मादक साँस कुँआरी ले लो !

शून्य सुना करता है मेरे
प्राण-यज्ञ की पूत ऋचाएं !

गिनती में बँध जाने वाले
श्रोता मेरे साध्य नहीं हैं,
सुनकर करें प्रशंसा-निन्दा
वे मेरे आराध्य नहीं हैं,
महा मौन तक पहुँचाने का
माध्यम मेरी गीत-शिखाएं !

एक किसी क्षण नहीं, सतत ही
अनहद नाद उठा करता है,
सांसों के सरगम में मेरे
मुखरित ऋत की समरसता है,
वीणा-वादक-गीत मुझी में
सन्निहित सम्पूर्ण विधाएं !

लघु भूले सीमाएं, इतना—
त्याग विराट बना देता है,
केवल 'स्व' का बोध भिखारी
को सम्राट बना देता है,
एकलव्य मैं, अन्य न कोई
द्रोण स्वयं मेरी निष्ठाएं !

खतम हुआ जाता है मेला,
तुम भी एक खिलौना ले लो !

यहां और जितने भी आये
रीत गई उन सब की झोली,
तुम ही एक अकेले गाहक
जिसने अपनी गांठ न खोली,
चुनलो रूप कुमारी, कोई
परियों का मृगछौना ले लो !

अमर कला की विफल खोज में
तुम ने सांझ-सबेरा खोया,
संगी छूटे, साथी छूटे,
मंजिल दूर, बसेरा खोया,
स्वजन प्रतीक्षा करते कुछ तो
सौदा आधा-पौना ले लो !

तुम कहते हो मिट्टी के ये,
चलते राह बिखर जायेंगे,
इनके कच्चे रंग हवा में
अनजाने ही झर जायेंगे,
तो फिर सच का मन बहलाने
कोई सपन सलोना ले लो !

आज व्योम के मरु-मानस में
इन्द्र धनुष उग आया !

आत्म चेतना बिना प्राण का
रस निःशेष न होता,
शेष मानते जिसे, वही छिप,
अन्तरतम में सोता,
यह मन्मथ के कुसुमायुध की
बिम्बित सुन्दर छाया !

ज्योति-तिमिर की सन्धि मात्र ही
नाम रूप का कारण,
'केवल' ही कर सकता अपना
बन्धन सहज निवारण,
भुने बीज के उर में अंकुर
कब किसने उकसाया ?

गृहत्यागी बनने का निर्लज
जलधर स्वांग रचाते,
किन्तु, सिन्धु की सुधि में
भू पर आँसू-कण बरसाते,
कब विराग का बाँध मुखौटा
विकल राग छिप पाया !

पग ध्वनि तो सुनता था कब से,
पर, तुम से साक्षात् न होता !

असमंजस में पड़ी सुनहली
सुबह साँवली शाम हो गई,
मेरे हर पल की व्याकुलता
अपने आप प्रणाम हो गई,
प्रतिध्वनि तो सुनता था कब से
ध्वनि का उद्गम ज्ञात न होता !

मान लिया असमर्थ स्वयं को
सोचा, विवश अवश हो तुम भी,
पर, फिर सहसा लगा कि 'मैं' 'तुम'
मूल स्वयं ही, मृदुल कुसुम भी,
कर्दम की कलुषित काया से
अलग कभी जलजात न होता !

समझ गया मैं मेरे क्षर में
सहज समाहित तू अक्षर भी,
हुआ तिरोहित द्वंद्व हृदय का
मैं नश्वर हूँ, परमेश्वर भी,
मोह टूटता नहीं, सत्य का
अगर निठुर आघात न होता !

यह दर्पण का महल कि इसमें
सब प्रतिबिम्ब तुम्हारे हैं !

खण्ड-खण्ड इन रूपों ने मिल
एक रूप परिपूर्ण किया,
भिन्न-भिन्न इन रंगों ने मिल
एक रंग अवतीर्ण किया,
लघु विराट के इस अन्वय ने
कितने प्रश्न उभारे हैं ?

पर्ण-फूल-फल-शाखाओं में
एकोऽहम अभिव्यक्त हुआ,
मूल भूल कर, अचिर फूल पर
भावुक भंवरा मत्त हुआ,
लीला मान असंग रहे वे
जिनके नयन उघारे हैं !

प्रकृति-पुरुष के प्रथम मिलन का
बिना हेतु संयोग बने,
फिर अपनी ही रचना से छिप
उसके लिये वियोग बने,
भ्रम के इस परदे में तुमने
कितने रहस संवारे हैं !

रहा अवेधित लक्ष्य, शरों से
रिक्त आज तूणीर हुआ !

फिरी भटकती दृष्टि चंचला
अक्षमता का दोषी हूं,
मैं अपने में नहीं सत्य यह,
अपना मात्र पड़ोसी हूँ,
नहीं आचरण, किन्तु चरण रच
मेरा अहम् कबीर हुआ !

उड़ा शून्य में अवसर का खग
अब क्या कह कर धीर धरूँ ?
रुष्ट हो गये आत्म-द्रोण को
फिर कैसे सन्तुष्ट करूँ ?
यह लज्जा का लघुतम क्षण ही
पांचाली का चीर हुआ !

बिना ध्यान के क्रिया अधूरी
बन पाती अनिमेष नहीं,
अन्तर मुख होते ही सन्मुख
रह जाता परिवेश नहीं,
वही साध्य तक पहुँचा, रहते
जो शरीर, अशरीर हुआ !

इतने दिन था बन्द, आज ही
वातायन खोला है !

कहता रहा बसंत, गन्ध को
यों ही मत लौटाओ,
चिन्तित रहा अनन्त, स्वयं को
सीमित नहीं बनाओ,
अब तक था हत् चेत, आज ही
हृद्-चिन्तन बोला है !

अपने रुग्ण विमूर्छित मन को
प्राण वायु पहुँचाओ,
तिमिर ग्रस्त लोचन को फिर से
परम विभा दिखलाओ,
जीवन-रण के इस क्षण में फिर
नारायण बोला है !

छिपा हुआ जो द्वंद्व, उसे ही
परमानन्द बनाओ,
बिछुड़ गई जो बूंद, उसे ही
महा समन्द बनाओ,
बन कर फिर प्रारम्भ स्वयं ही
पारायण बोला है !

मेरी कनक गगरिया ले लो,
अपनी बाँस बँसुरिया दे दो !

उर की पीर लजीली उसको
मैं रागों का घूंघट दूंगी,
मन की प्यास रंगीली उसको
अधरों का यमुना तट दूंगी,
मेरी रतन चुनरिया ले लो,
अपनी फटी कमरिया दे दो !

मैं विरहन हूँ, इस असमय में
मुझे नहीं शृंगार सुहाता,
अनियारी आँखों का काजल
आँसू जल से घुल-घुल जाता,
मेरा रसमय यौवन ले लो,
अपनी नई उमरिया दे दो !

भाती नहीं तितलियाँ मुझको
ये लम्पट मधुकर की दूती,
रहे समर्पण के क्षण तक यह
मेरी उजली देह अछूती,
मेरी भोली रधिया ले लो,
अपना कुँअर कन्हैया दे दो।

उड़ते अनगिन पंख निरन्तर
किन्तु अचंचल अम्बर का मन !

लघुतम कीट पतंग भृंग से
तेरा ध्यान उचट जाता है,
एक बूंद जितनी विपदा से
कायर कितना घबराता है,
भीम भुजंगों से आलिंगित
महका करता चन्दन का वन !

तू दुर्बल, सत-असत नहीं कुछ,
अवसर तुझे मुखौटा देता,
विस्मृत हुआ स्वरूप, रह गया
तू केवल बन कर अभिनेता,
जग-दर्शक के कुटिल व्यंग को,
मूढ़ समझता तू अभिनन्दन !

जीवन नहीं कामना कोरी
उसके साथ कर्म का लेखा,
चित्र भावना मात्र नहीं है
उसके साथ बंधी है रेखा,
धूप-छांह के छन्दों में ही
मुखरित महा सृजन का दर्शन !

सीधी-तिरछी हर रेखा में
तेरा रूप उभर आता है !

चाहा कितनी बार कि कोई
अन्य दूसरा चित्र बनाऊँ,
तेरी आकृति की कारा से
अपने मन को मुक्त कराऊँ,
पर, हर दर्पण में तेरा
प्रिय प्रतिबिम्ब उतर आता है !

दीन अंगुलियाँ कितनी परवश
उनको भी अभ्यास हो गया,
रंग-तूलिका निरपराध है
अब मुझको विश्वास हो गया,
लहरें ले कोई भी करवट
उर में चाँद उतर आता है !

पहले अपनी छवि अंकवाने
सांझ-सबेरे गाहक आते,
पर, अब मुझको पागल कह कर
हाट छोड़ आगे बढ़ जाते,
निष्ठा निन्दा बनी सोच यह
हृदय पुलक से भर जाता है !

यह तो है लघुतम चिनगारी,
अग्नि परीक्षा अभी शेष है !

महाकाल के एक दंश से
तू इतना भयभीत हो गया ?
ओढ़ मौन का कफन, अधर की
अरथी पर संगीत सो गया !
यह तो है संकेत मात्र ही
विशद विवक्षा अभी शेष है !

हुई दृष्टि की असि आकुंठित,
गदा गिर गई तन संयम की,
मन-तुरंग उन्मत्त हो गया,
शिथिल पड़ गई रास नियम की,
यह तो कोमल तृणाघात भर
परम तितिक्षा अभी शेष है !

अपने जड़ को केन्द्र मान कर
तू ने कल्पित परिधि बनाई,
भूल गया तू महा मरण ने
हर जीवन की अवधि बनाई,
यह तो है संक्षिप्त भूमिका
गहन समीक्षा अभी शेष है !

सभी व्यथाएं हुईं पुरानी,
कोई नई वेदना दे दो !

शब्द-सुतों को जन्म दे चुकी
कुन्ती सी अनुभूति कुँआरी,
स्वर के शिव के जटा जूट से
गिरी गीत-गंगा सुकुमारी,
सभी कथाएं हुईं पुरानी,
कोई नई कल्पना दे दो !

हवि के सम्बल बिना हृदय का
अंगारा कजलाया जाता,
मन का मूढ़ पुजारी कब से
फिर-फिर एक ऋचा दुहराता,
सभी विधाएं हुईं पुरानी,
कोई नई प्रेरणा दे दो !

इतनी निर्बल यज्ञ-अग्नि से
सूक्ष्म पुरुष संभूत न होगा,
प्राणों के गोपन में गुंजित
आदि नाद अनुभूत न होगा
सभी कलाएं हुईं पुरानी,
कोई नई चेतना दे दो !

जिन नयनों का प्रेम निमन्त्रण
तुमने था ठुकराया,
उन नयनों में सजल स्नेहमय
एक नयन था मेरा !

तुम समाधि के भ्रम में खोये
मुझे नहीं पहचाना,
यह प्रसंग यदि ताना है तो
संग उसीका बाना,
जिन सुमनों का विनत समर्पण
तुम को नहीं सुहाया,
उन सुमनों में मदिर सुरभिमय
एक सुमन था मेरा !

दिव्य गंध को मात्र वासना
कह कर तुमने टाला,
बना सहज को शूली
ऋत का पथ विकृत कर डाला,
जिन सपनों का सुरधनु जीवन
तुम्हें लगा छल, छाया,
उन सपनों में रुचिर रंगमय
एक सपन था मेरा !

तुम अभंग के पीछे भूले
भंगुर की गुरु गरिमा,
रटा रटाया ज्ञान बन गया
चेतन की जड़ सीमा,
जिन रत्नों का मंगल कंकण
फेंका कह कर माया,
उन रत्नों में ज्योतित चिन्मय
एक रत्न था मेरा !

तू अबोध आग्रह-निग्रह का
भेद नहीं कर पाया,
जो स्वरूप में स्थित है उसमें
स्वयं अरूप समाया,
जिन चरणों का सहज आगमन
तुम्हें न क्षण भर भाया,
उन चरणों में अरुण विभामय
एक चरण था मेरा !

रही चेतना बनी अहिल्या
जागी नहीं अभागी,
जान बूझ कर बधिर बन गया
अनहद का अनुरागी,
जिन वचनों का नम्रनिवेदन
तुमको लगा पराया,
उन वचनों में दिव्य अर्थमय
एक वचन था मेरा !

शब्द-पंख के बिना अर्थ का
विहग नहीं उड़ पाता !

फंस जाती अनुभूति सुन्दरी
इंगित के चंगुल में,
बिना गीत सम्बन्ध न रहता
पाटल में बुलबुल में,
कौन वासना लीन मनुज को
श्रेयस् तक पहुँचाता !

शून्य नहीं होता परिभावित
रहता मात्र नयन में,
मनवन्तर संवत्सर वत्सर
कब बँधते लघु क्षण में ?
रहते सभी अनाम न कोई
कभी पुकारा जाता !

पंगु बना सा बैठा रहता
चिन्तन आकुल मन में ,
हास-रुदन का कोलाहल ही
रह जाता जीवन में,
रह जाती अभिव्यक्ति अधूरी
जीवन शिशु तुतलाता !

निर्विचार तक फेंक अहेरी
तू विचार का खर शर !

साधन की इति में ही रहता
छिपा साध्य का उद्गम,
अनहद की हद तक बस जाकर
थम जाता है सरगम,
हर ऊँचाई का है प्रतिपल
लक्ष्य सुनिश्चित अम्बर !

अथक चल रहे महासृजन का
अन्तिम ध्येय विसर्जन,
विगत द्वंद्व वह प्राण गया बन
जिसका अहम् अकिंचन,
तू दिनकर तक पहुँच तिमिर के
काजल से लोचन भर !

मिली चेतना, यह विराट का
मानो मिला निमन्त्रण,
देह नहीं है बन्धन, यह है
आत्मा का सिंहासन,
प्राप्त करो अमरत्व मिला है
जन्म-मृत्यु का अवसर !

यह मेरा सौभाग्य कि अब तक
मैं जीवन में लक्ष्यहीन हूँ !

रूढ़ि-रुग्ण प्रतिबद्ध न चिन्तन
प्रतिभा का कौमार्य सुरक्षित,
मेरा मौलिक ज्ञान अभी तक
अन्ध क्रिया से हुआ न दूषित,
मेरा भूत-भविष्य न कोई
वर्तमान में चिर नवीन हूँ !

कोई निश्चित दिशा नहीं है
मेरी चंचल गति का बन्धन,
कहीं पहुँचने की न त्वरा में
आकुल व्याकुल है मेरा मन,
खड़ा विश्व के चौराहे पर
अपने में ही सहज लीन हूँ !

करती नहीं हृदय का मेरे
कोई एक कामना शोषण,
मदिर वासना की मधुपरियाँ
सतत नाचतीं सम्मुख प्रतिक्षण,
मुक्त दृष्टि निरुपाधि निरंजन
मैं विमुग्ध भी उदासीन हूँ !

दो पीड़ा का कनक, बना दूं
तुमको एक गीत का कंगन !

पहन जिसे रसना रतनारी
घोलेगी प्राणों में अमृत,
हृदय दंश जलजात बनेंगे
होगा जीवन नीर तरंगित,
दो कलंक का काजल, कर दूं
अपना रक्त मिला कर चन्दन !

कह अस्पृश्य जिसे दुतकारा
उससे होगा इष्ट सुशोभित,
मदिर गंध से आकुल सांसें
कर देंगी सर्वस्व समर्पित,
दो पतझर का विरह, जगा दूं
कोकिल के कंठों में मधुबन !

तोड़ समय की निर्मम कारा
फूटेंगे पत्थर में किसलय,
मरुथल में नन्दन उतरेगा
पंचम तक जब पहुँचेगी लय,
दो ज्वाला का तिलक, बना दूं
तम को ही दीपक का दर्शन !

हंस मानसर भूला !

सनी पंक में चंचु, हो गये
उजले पर मटमैले,
कंकर चुगने लगा वही जो
मुक्ता चुगता पहले,
क्षर में क्या ऐसा सम्मोहन
जो तू अक्षर भूला ?

कमल नाल से बिछुड़, कांस के
सूखे तिनके जोरे,
अवगुण्ठित कलियों के धोखे
कुण्ठित शूल बटोरे,
पर में क्या ऐसा आकर्षण
जो परमेश्वर भूला ?

नीर-क्षीर की दिव्य दृष्टि में
अन्ध वासना जागी,
गति का परम प्रतीक बन गया
जड़ता का अनुरागी,
क्षण को अर्पित हुआ, साधना
का मन्वन्तर भूला !

तू अपनी उपलब्धि आप है !

अनगिन विश्व तुम्हारे भीतर
साथ समन्वित ईश्वर-नश्वर,
विग्रह-सन्धि विराम-निरन्तर
व्यक्त-गुप्त सीमित-अमाप है !

द्वंद्वातीत-द्वंद्वमय तत्पर
छन्द-बद्ध-निर्बन्ध महेश्वर,
चिन्मय-मृण्मय संशय-निश्चय
सृजन-विसर्जन पुण्य-पाप है !

गीत-अगीत नवीन-पुरातन
सहज-कठिन प्रारम्भ-समापन,
एक-अनेक अरूप-रूपमय
विघ्न-सिद्धि वरदान-शाप है !

सुधा कल्पना मात्र, गरल का
दावा सोलह आने सच है !

कभी किसी ने चखा न देखा
केवल नाम चला आता है,
पर, विष बिकता चौराहे पर
जो खाता है, मर जाता है,
दीपक का जलना है कल्पित,
जलते हैं परवाने सच है !

बैठ किसी दीवट पर सुख से
निशि में स्नेह पिया करता है,
किन्तु, बावला परवाना तो
उस निर्मम पर जल मरता है,
सत्यम् शिवम् सुन्दरम् कल्पित,
सपने अधिक सुहाने सच है !

यह तो केवल वाक्य कहीं भी
अंकित होकर रह जाता है,
पर, सपना तो प्रिय की छवि को
पुतली पट पर ले आता है,
भावों की मौलिकता कल्पित,
सभी स्वभाव पुराने सच है !

करो न गीले नयन, हृदय की
आग नहीं बुझ जाये !

अपने को पाने का अवसर
यों न कहीं खो देना,
पीड़ा के जंगल में मन का
संयम मत बो देना,
चुन लो सुर के सुमन, समय का
राग नहीं दब जाये !

वर्तमान के लिए न गूंथो
गत की सूखी माला,
तिमिर खोजने के न लिये है
दीपक का उजियाला,
करो न धीमे चरण, मिलन का
क्षण न कहीं टल जाये !

पूनम हो या अमा सूर्य की
जननी रात रहेगी,
शूल-फूल दोनों को छूकर
मलय बयार बहेगी,
ढंको न अपने अयन, किसी का
मन न कहीं दुख जाये !

बिधे सुई से उसे सुमन दल
अपना मालाकार समझता !

आघातों के बिना कभी क्या
जीवन एक कला बन पाता ?
अशुभ अमंगल का यह भय ही
कितने मंगल घट रखवाता ?
उठा धरे अंगार मर्म पर
वेणु उसे स्वरकार समझता !

जलन नहीं होती तो कैसे
गूंज पहुँच चन्दन बन जाती ?
बिना विखंडित हुए शिला क्या
प्रतिमा बन मन्दिर में आती ?
अपने कारागार मौन को शब्द
सहज शृंगार समझता !

पंच भूत के कर्दम में ही
चिर विराट का शतदल खिलता,
परम शान्ति तक पहुँचाती है
प्राणों की अनमोल विकलता,
प्रिय के पथ का पथिक शाप को
वर का एक प्रकार समझता !

देवि, सुरीले मधु कंठों से
मेरे बोल सुवासित मत कर !

अपने सहज अछूतेपन में
अच्छा है निर्गन्ध रहें तो,
रस की इन घड़ियों में यों ही
ये अनगाये छन्द रहें तो,
मानूंगा आभार, तुम्हारे अधरों से
निर्वासित मत कर !

ये मानस के क्षण अर्पण के
यदि इनका अनुबन्ध रहे तो,
केवल तुम से—केवल तुम से
यदि इनका सम्बन्ध रहे तो,
ये लजवन्ते सपन सुहागिन, इनको
कहीं प्रकाशित मत कर !

मेरा अनुनय-विनय तुम्हारे
मृदु मन पर आघात करे तो,
इस बसन्त की प्रथम निशा को
पावस साश्रु प्रभात करे तो,
ये करुणा के दीप, इन्हें दे आंचल
ओट, निराश्रित मत कर !

यह जीवन तो नीर, किनारा
कोई और मिलेगा !

बिछुड़ा मन का मीत, प्रीत के
उर में व्यथा बहुत है,
नयनों की नीरव चितवन में
प्रिय की कथा बहुत है,
मत बन सांस अधीर, सहारा
कोई और मिलेगा !

यह पतझर की शाम, अकेला
फूल उदास बहुत है,
शूलों की महफिल में अलि का
कटु उपहास बहुत है,
रो मत मृदुल समीर, दुआरा
कोई और खुलेगा !

प्रभु पूजा का दीप, देह का
यह उपमान बहुत है,
गंगा जल कहलालें आंसू
यह सम्मान बहुत है,
गा प्रभात का गीत, भीत हो
अंधियारा पिघलेगा !

शंख-सीप तो तट पर, लेकिन
मोती पारावार में !

यहां-वहां का करती रहती
भीड़ निरर्थक शोर रे,
सांस रोक कर तल तक पहुँचे
कोई गोताखोर रे,
कमठ केकड़ा यहां, सुनहरी
मछली नीर अपार में !

जो बंसी लटकाये बैठे
खोते सन्ध्या भोर रे,
तरी लिये जो उन तक पहुँचे
वह मछुआ तो और रे,
काई कर्दम यहां, मनोहर
नील-कमल मंझधार में !

घुटने तक पानी में जाकर
लौटेंगे कमजोर रे,
लहरों का संवेग सहेगी
कोई भुजा सजोर रे,
शशधर तक पहुँचेगा जलनिधि
जब जागेगा ज्वार में !

पनघट तक आकर भी गागर
रीती लौट रही है !

इसे शीश पर धर कर लाई
पनिहारिन बेचारी,
सींचूंगी तुलसी का चौरा
आंगन की फुलवारी,
पर, माटी की इस काया में
ओझल छेद कहीं है !

बांध वयस का रज्जु, इसे था
विश्व कूप में डाला,
कलित कंठ में पहनाई थी
लहरों ने वरमाला,
किन्तु, नीर को रख पाने की
क्षमता रंच नहीं है !

इस गगरी ने कुंभकार के
श्रम को व्यर्थ गँवाया,
रूप रंग आकार देखकर
गाहक गया ठगाया,
पुनः चाक चढ़ चौरासी के
केवल राह यही है !

मेरा है सम्बन्ध सभी से
सबसे मेरी स्नेह-सगाई !

मैं अखण्ड हूँ, खण्डित होना
मेरे मन को नहीं सुहाता,
पक्ष-विपक्ष करूँ मैं किसका,
मैं निष्पक्ष, सभी से नाता,
मेरे सन्मुख सभी बराबर
राजा-रंक हिमालय-राई !

सबके कुशल क्षेम का इच्छुक
सब में सत है मेरी निष्ठा,
सब की सेवा इष्ट मुझे है
सब की प्रिय है मुझे प्रतिष्ठा,
सब ही मेरे सखा बन्धु हैं,
मैं सब के तन की परछाईं !

सब की पद-रज चन्दन मुझको,
सब के साँस सुरभिमय कुंकुम,
सब का मंगल मेरा मंगल,
गाता मेरा प्राण विहंगम,
जीवन का श्रम ताप हरे, यह
मेरे गीतों की अमराई !

जो अन्तर की आग, अधर पर
आकर वही पराग बन गई !

पाँखों का चापल्य सहज ही
आँखों का आकाश बन गया,
फूटा कलि का भाग्य, सुमन का
सहसा पूर्ण विकास बन गया,
अवचेतन में छिपी घृणा ही
चेतन का अनुराग बन गई !

द्वंद्व लीन मानस का मधु छल
प्राणों का विश्वास बन गया,
वृद्ध तिमिर का सित कुन्तल दल
दृग का दिव्य प्रकाश बन गया,
'स्व' की चरमासक्ति स्वयं से
छल कर, परम विराग बन गई !

जो अभेद है अनायास वह
भाषित होकर भेद बन गया,
महत् भागवत अर्जुन तक आ
गीता का परिच्छेद बन गया,
सप्तम स्वर तक पहुँच भैरवी
कोमल राग विहाग बन गई !

हर प्रदीप की पृष्ठ भूमि में
अन्धकार अनिवार्य है !

बिना सघनता क्षुद्र विरलता
कर सकती विस्तार नहीं,
मिले बिना परिवेश शून्य का
सज पाता आकार नहीं,
कारण ही वह दर्पण जिसमें
बिम्बित होता कार्य है !

घबराता है व्यर्थ द्वंद्व से
वह तो जीवन-मूल है,
कठिन-सहज संघर्ष मात्र ही
पाटल और बबूल है,
जो अलिप्त रह करे भोग का
अनुभव वह आचार्य है !

देह धनुष पर चढ़ा चेतना
का जो तीखा तीर है,
दृष्टि सिद्ध वह पार्थ कि जिसके
दृग में केवल कीर है,
करे विषम में सम का स्थापन
वह दर्शन ही आर्य है !

लाख करो तुम तम की निन्दा
उसका स्नेह सितारों से है !

निर्मल नभ को शोणितमय कर
डूब गया सूरज हत्यारा,
पिघले कंचन के आतप से
मिला दिशाओं को छुटकारा,
उपहारों से नहीं, आदमी खुश अपने
अधिकारों से है !

निपट निरंकुश शासक बल से
चाहे जय-जयकार करा ले,
किन्तु, कहाँ क्षमता है उसमें
जो जनता का हृदय चुराले,
किसी एक से नहीं, आँख का
परिचय, कई हजारों से है !

जो है जिसका इष्ट, उसी पर
उर का श्रद्धा भाव अटल है,
जहाँ रमे जिसका मन-पंछी
जंगल में उसको मंगल है,
पत्थर की प्रतिमा में प्रभु का
दर्शन मात्र विचारों से है !

पहन आवरण कोई, लेगा
मरण तुझे पहचान !

हीरक मरकत जटित आभरण
सज सोलह शृंगार,
चाहे धूनी रमा नग्न तन
क्षण-क्षण अलख उचार,
छिपा सकेगा नहीं प्राण को
कोई भी परिधान !

चढ़ चाहे हिमगिरि की चोटी
विधु पर यान उतार,
डूब जलधि के अन्तस्तल में
दोनों ध्रुव कर पार,
छल न सकेगा चिर विराम को
कोई भी अभियान !

सुधा-सुधा करते वसुधा से
कितने हुये अतीत,
अश्रु धूल ने पिये, व्योम ने
निगल लिये जय-गीत,
क्षय के ही पृष्ठों पर अंकित
इति का अटल विधान !

ओ मछली सरवर तीर की !

यह कैसा प्यार कगार से ?
जो छूट चली मंझधार से ?
तू किस याचक को दाता गुन
सुधि भूली गहरे नीर की !

सुन, कहती लहर झकोर कर
तू अड़ी रह गई यहीं अगर,
जायेगा पल में ज्वार उतर
फिरते ही साँस समीर की !

क्यों स्वाति बूँद का क्षण खोती ?
जनमेगा कैसे फिर मोती ?
है तुझको थाती लौटानी
उस सृजन संगिनी पीर की ।

वायु मेरी आयु अः
कितनी सदय,
सुलभ तुम सर्वत्र, मैं
निश्चित अभय !

शून्य के मूच्छित हृदय
की रागिनी,
मेघ के दृग में जगी
सौदामिनी !

रह, तुझे माला पिन्हाऊँ
गीत की,
प्रिय स्वीकारोगी चिन्हारी
प्रीत की ?

नहीं हृदय में राग, भला, तब
वीणा क्या बोलेगी ?

कला स्वयंभू नहीं, मात्र वह
प्रतिध्वनियों का क्रम है,
सपनों का सौन्दर्य, स्वेद से
सने सत्य का श्रम है,
अगर मूल निर्गन्ध, फूल में
सुरभि नहीं डोलेगी !

बिम्ब नहीं, पर, प्रतिबिम्बों का
मेला भर यह जग है,
प्रति मंजिल के अन्तस्तल में
कोई गति का पग है,
अगर न उर में आग, रश्मियाँ
तम को क्या तोलेंगी ?

जो अमूल्य है, उससे ही सब
जीवन मूल्य बने हैं,
अनगिन की अंगुली ही गिनकर
कहती है, कितने हैं ?
नहीं भावना अगर, तूलिका
रंग कहाँ घोलेगी ?